भरतमुनि के रस सूत्र की समीक्षा

एम्.ए – II सेमेस्टर

डॉ उमा शर्मा
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
एन.ए.एस (पी.जी.) कॉलेज, मेरठ

काव्य से रस कैसे उत्पन्न होता है ? यह काव्यशास्त्र का शाश्वत प्रश्न रहा है। संस्कृत नाट्यशास्त्र के आचार्य भरतमुनि ने सर्वप्रथम प्रामाणिक रूप 'रस' को परिभाषित करते हुए कहा - 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'। अर्थात् विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव के संयोग से 'रस' की निष्पत्ति होती है। किन्तु इस सूत्र के 'निष्पत्ति' पद पर परवर्ती सूत्र के व्याख्याकार एकमत नहीं हैं उन्होंने इस पद की स्वमत्यानुसार व्याख्या प्रस्तुत की है जिनमें भट्टलोल्लट, श्रीशंकुक, भट्टनायक और आचार्य अभिनवगुप्त प्रमुख हैं।

आचार्य भरतमुनि के रससिद्धान्त की व्याख्या करने वाले सर्वप्रथम आचार्यभट्टलोल्लट हैं। ये 'निष्पत्ति' पद का अर्थ 'उत्पत्ति' मानते हैं। उनके मत में विभाव, अनुभाव आदि के संयोग से अनुकार्य राम आदि में 'रस' की 'उत्पत्ति' होती है। उनमें भी ~~की~~ विभाव सीता आदि मुख्य रूप से रस के उत्पादक होते हैं। अनुभाव उस उत्पन्न हुए रस को बोधित करने वाले होते है और व्यभिचारिभाव उस उत्पन्न रस के परिपोषक होते है। अतः स्थायिभाव के साथ विभावों का उत्पाद्य - उत्पादकभाव सम्बन्ध, अनुभावों का गम्य - गमकभाव और व्यभिचारिभावों का पोष्य - पोषकभाव सम्बन्ध होता है यहीं 'संयोग' पद से अभिव्यंजित होता है। ऐसा मानकर ही व्याख्या में क्रमशः 'जनितः' 'प्रतीति योग्यः कृत' तथा 'उपचितः' इनच पदों का प्रयोग किया गया है।

इस सिद्धान्त के अनुसार रस मुख्य रूप से अनुकार्य राम आदि में रहता है और उनका अनुकर्ता होने के कारण गौणरूप से नट में रस की स्थिति मानी है। सामाजिक जनों के रसानुभूति के विषय में यह सिद्धान्त तटस्थ है यही इस सिद्धान्त न्यूनता रही है दूसरी बात यह है कि अनुकार्य राम आदि तो अब संसार में नहीं हैं। अतः इस समय किये जाने वाले अभिनय से उनमें रस की उत्पत्ति नहीं

बन सकती है इसलिए उनके अनुकर्ता नट में भी रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती हैं। यह सिद्धान्त मीमांसा दर्शन से सम्बन्धित है।

न्याय सिद्धान्त के अनुयायी भरत-सूत्र के दूसरे टीकाकार श्री शंकुक ने 'निष्पत्ति' का अर्थ अनुमिति माना है तथा सामाजिकों के साथ रस का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है। नट कृत्रिम रूप से अनुभाव आदि का प्रदर्शन करता है, परन्तु उनके सौन्दर्य के बल से उनमें वास्तविकता की प्रतीति होती है। इन कृत्रिम अनुभाव आदि को देखकर सामाजिक नट में वस्तुतः विद्यमान न होने पर भी उसमें अनुमान कर लेता है और अपनी तल्लीनता के वशीभूत होकर उस अनुमीयमान रस का रसास्वादन करता है।

श्री शंकुक ने नट में रस को अनुमेय माना है, अनुमान की सामग्री में नट में 'चित्रतुरगन्याय' से राम-बुद्धि का प्रतिपादन किया गया है। जैसे घोड़े के चित्र को देखकर 'यह घोड़ा है' इस प्रकार का व्यवहार होता है, परन्तु इस प्रतीति को न सत्य कहा जा सकता है, न मिथ्या, न संशय रूप और न सादृश्य प्रतीति रूप ही माना जाता है। 'चित्रतुरग' में होने वाली बुद्धि इन चारों की बुद्धियों से भिन्न होती है। इसी प्रकार नट में जो राम विषयक बुद्धि होती है वह सम्यक् मिथ्या संशय और सादृश्य इन चारों से ही विलक्षण होती है।

श्री शंकुक ने सामाजिक जनों में रस की प्रतीति कराने का प्रयत्न तो अवश्य किया लेकिन वह पर्याप्त रूप उचित नहीं हुआ। उनके अनुसार सामाजिक कृत्रिम विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव के साथ कृत्रिम स्थायिभाव के सम्बन्ध से नट में कृत्रिम राम सीता आदि विषयक रति का अनुमान होता है। इससे सामाजिक की समस्या हल नहीं होती है, सामाजिक को रस का साक्षात्कार होता है उसका उपपादन करना चाहिये था।

आचार्य भट्टनायक ने सामाजिक को होने वाली साक्षात्कारात्मक रसानुभूति के उत्पादन के लिए एक नये मार्ग का अवलम्ब किया। उसे साहित्य-शास्त्र में 'भुक्तिवाद' कहा गया है। भट्ट का विचार है कि रस की निष्पत्ति न अनुकार्य राम आदि होती है और न अनुकर्त्ता नट आदि में। अनुकार्य और अ दोनों तटस्थ है, उदासीन हैं उनको रसानुभूति नहीं हो सकती वास्तविक रसानुभूति सामाजिक को होती है इसका प्रतिपाद अन्य व्याख्याकारों ने नहीं किया। इसलिए पूर्व सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए कहा - न तात्स्थ्येन रस उत्पद्यते, न प्रतीयते। यहां 'न उत्पद्यते' से भट्टलोल्लट के 'उत्पत्तिवाद' का और 'न प्रतीयते' शंकुक के अनुमितिवाद का निराकरण किया। अभिनवगुप्त के सिद्धान्त अभिव्यक्तिवाद का भी खण्डन करते हुए कहते है रस व अभिव्यक्ति नहीं होती होती क्यों कि अभिव्यक्ति होने वाली व पूर्व और पर में भी विद्यमान रहती पर रसास्वादन में ऐसा न होता है इसलिए रस के विषय में अभिव्यक्तिवाद ठीक नहीं है।

भट्टनायक अन्य सिद्धान्तों का खण्डन करने के पश्चा स्व-सिद्धान्त - भुक्तिवाद का प्रतिपादन करते हैं। भुक्तिवाद की स्थापना के लिये शब्द में स्वीकृत अभिधा और लक्षणा शक्ति के अतिरिक्त भावकत्व तथा भोजकत्व नामक दो नये व्याप की कल्पना की है। अभिधा या लक्षणा से काव्य से जो अर्थ उपस्थित होता है उसको शब्द का भावकत्व व्यापार परिष्कृत कर उसमें से व्यक्ति-विशेष के सम्बन्ध को हटाकर उसका साधारणीकरण कर देता है तब शब्द का भोजकत्व नामक तीसरा व्यापार सामाजिकों को रस का साक्षात्कारात्मक भोग कराता है। यही भट्टनायक का भोजकत्व सिद्धान्त है जो भुक्तिवाद कहलाता है।

भट्टनायक ने अपने सिद्धान्त में रसानुभूति सामाजिक को ध्यान में रखते हुए दिया, लेकिन उन्होंने शब्द में भावकत्व और भोजकत्व नामक जिन दो नवीन

व्यापारों की कल्पना की वे अनुभव सिद्ध नहीं हैं और जिस स्थायिभाव का भोग बताया है वह राम-सीतादिगत स्थायिभाव है या नटगत या सामाजिकगत इसका स्पष्टीकरण भी नहीं किया।

आचार्य अभिनवगुप्त भरत के रससूत्र के सबसे प्रमुख व्याख्याकार हैं इन्होंने भट्टनायक के सिद्धान्त को परिष्कृत किया, लेकिन इनके भावकत्व और भोजकत्व नामक दो नवीन व्यापारों को अनुभवसिद्ध न होने के कारण स्वीकार नहीं किया परन्तु भावकत्व के साधारणीकरण अवश्य माना तथा शब्द की अभिधा लक्षणा शक्तियों के साथ व्यञ्जना को भी स्वीकार किया। इन्होंने यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया कि सामाजिकगत स्थायिभाव सामाजिक की आत्मा में स्थित रहता है वह साधारणीकृत रूप से उपस्थित विभावादि-सामग्री से अभिव्यक्त या उद्बुद्ध हो जाता है और तन्मयीभाव के कारण वेद्यान्तर के सम्पर्क शून्य ब्रह्मास्वाद के सादृश्य परमानन्द रूप में अनुभूत होता है।